वेदो में अन्तर्निहित नारी–स्वरूप

डॉ0 आभा द्विवेदी
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर

शोध–सार

नारी स्नेह, त्याग, समर्पण की प्रतिमूर्ति है। यह दुष्ट मर्दन में चण्डी, संग्राम में कैकेयी, श्रद्धा में शबरी, सौन्दर्य में दमयन्ती, सुगृहिणी में सीता, अनुराग में राधा, विद्वत्ता में गार्गी और राजनीति में लक्ष्मीबाई है। स्त्री ही समग्र सृष्टि की अधिष्ठात्री है नारी से परिवार बनता है और आगे बढ़ता है। पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्व का विकास एक–दूसरे का पूरक है। किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति का मानदण्ड उस देश की नारी को ही माना जाता है। नारी का अपमान मानवता का सबसे बड़ा अपराध है। इसकी उपेक्षा मनुष्य के अस्तित्व को जर्जर, नीरस और व्यर्थ कर देती है।

त्वम् स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।
सुधा त्वं अक्षरे नित्ये तृधा मात्रात्मिका स्थिता।

मानव जीवन पद्धति में नारी विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना है। ब्रह्माण्ड को संचालित करने वाले विधाता की प्रतिनिधि है 'नारी'। समग्र सृष्टि नारी से इतर कुछ भी नहीं। इस सृष्टि में मनुष्य ने जब बोध पाया और अप्रतिम ऊर्जा के प्रति अपना आभार प्रकट करने का प्रयास किया तो उस समय बरबस ही मानव मुख से प्रस्फुटित हुआ'

त्वमेव माता च पिता त्वमेव.

अर्थात् हे प्रभु तुम 'माँ' हो। जब हम मानव ही किसी चेष्टा से आहत होते हैं तो हमारे मुख से एक शब्द प्रस्फुटित होता है और वह है 'माँ'। 'माँ' की ध्वनि आत्मा से गुंजायमान होती है।

ऐसी मान्यता है कि उत्पत्ति के पश्चात् मानव ने स्वयं को एकाकी पाया और परमात्मा से साथी माँगा। परमात्मा ने वायु से शक्ति, सूर्य से गर्मी, हिम से शीत, पारे से चंचलता, तितलियों से सौन्दर्य और मेघ–गर्जन से शोर लेकर स्त्री की रचना की, जो पुरुष की अर्धांगिनी, सहधर्मिणी कहलायी।

'अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया'

श0ब्रा0 5/2/1/10

'श्री' और 'लक्ष्मी' के रूप में वह मानव जीवन को सुख और समृद्धि से दीप्त और पुरि×जत करने वाली कही गयी। उसका आगमन पुरुष के लिए सौरभमय और सम्मानजनक था। मनु के अनुसार एकल पुरुष अपूर्ण है। नारी, स्वदेह तथा सन्तान इन तीनों से मिलकर ही पुरुष पूर्ण होता है। नारी से परिवार बनता है और आगे बढ़ता है। पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्व का विकास एक–दूसरे का पूरक है। पारिवारिक जीवन में दो प्रकार की जिम्मेदारियाँ रहती हैं– आन्तरिक और बाह्य जीवन सम्बन्धी। जिनसे क्रमशः स्त्री–पुरुष सम्बन्धित रहते हैं। पारिवारिक जीवन के सुचारु संचालन के लिए दोनों से सम्बन्धित उत्तरदायित्वों का निर्वहन आवश्यक होता है जिससे पारिवारिक जीवन में संतुलन स्थापित किया जा सके।

नारी स्नेह, त्याग, समर्पण की प्रतिमूर्ति है। यह दुष्ट मर्दन में चण्डी, संग्राम में कैकेयी, श्रद्धा में शबरी, सौन्दर्य में दमयन्ती, सुगृहिणी में सीता, अनुराग में राधा, विद्वत्ता में गार्गी और राजनीति में लक्ष्मीबाई है। स्त्री ही समग्र सृष्टि की अधिष्ठात्री है क्योंकि इस सृष्टि में बुद्धि, निद्रा, सुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा लज्जा आदि विविध रूप में स्त्री ही व्याप्त है।

किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति का मानदण्ड उस देश की नारी को ही माना जाता है। नारी का अपमान मानवता का सबसे बड़ा अपराध है। इसकी उपेक्षा मनुष्य के अस्तित्व को जर्जर, नीरस और व्यर्थ कर देती है।

नारी सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक होने के साथ ही सनातन संस्कृति एवं परम्पराओं की संवाहक है। 'नारी' शब्द में इतनी ऊर्जा है कि इसका उच्चारण मात्र ही मन–मस्तिष्क को झंकृत कर देता है। नारी का पूर्ण स्वरूप मातृत्त्व में विकसित होता है। यह मानव की ही नहीं अपितु मानवता की भी जन्मदात्री है क्योंकि मानवता के आधार रूप में प्रतिष्ठित सम्पूर्ण गुणों की वह जननी है।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं–

'जगत् मातु पितु संभु भवानी'(बालकाण्ड मानस)

अर्थात् नारी से उत्पन्न सब नारी ही होते हैं। शारीरिक आकार, प्रकार में भेद हो सकता है परन्तु वस्तुतः और तत्त्वतः सब नारी रूप हैं। संत ज्ञानेश्वर ने तो स्वयं को माऊली (मातृवत स्त्रीवत्) कहा है। सन्त कबीर भी समस्त जीव को स्त्री मानते हैं और शिव (परमात्मशक्ति) को पुरुष। स्त्री–पुरुष का मेल ही कल्याण, मोक्ष और सुगति है।

'रघुवंशम्'

महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य के इस मंगलाचरण में शिव–शक्ति की संयुक्त आराधना से यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रकृति–पुरुष के एकाकार हुए बिना सृष्टि का सृजन एवं संचालन नहीं हो सकता। नारी के बिना सृष्टि की परिकल्पना ही मिथ्या है। भारतीय नारी की स्थिति में युगानुरूप परिवर्तन होते रहे हैं। नारी जीवन की सृष्टि से भारतीय इतिहास में वैदिक काल स्वर्ण युग माना जाता है। वैदिक युगीन नारी की स्थिति सुदृढ़ थी। परिवार तथा समाज में उन्हें सम्मान प्राप्त था। ऋग्वेद में नारी को शुभ लक्षण, उत्तम यश, उत्तम लाभ एवं ऐश्वर्य प्राप्त करने वाली, यजुर्वेद में सूर्य के समान तेजस्विनी, ध्रुव प्रकाश करने वाली प्रखर वक्ता घोषित किया गया है। उन्हें पुरुष सदृश यज्ञोपवीत व शिक्षा ग्रहण का भी पूर्ण अधिकार प्राप्त था।

ब्रह्मचर्येण कन्यां युवानं विन्दते पतिम्

अ0वे0 (11.5.17)

अर्धनारीश्वर की परिकल्पना हमारे भारतवर्ष की संस्कृति का आधार है। जहाँ स्पष्टतः वर्णित है कि शिव–शक्ति स्वरूप प्रकृति–पुरुष के सहकार से ही सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और विस्तार सम्भव है, जिससे पूर्णतः ओत–प्रोत है वैदिक युगीन नारी स्वरूप। नारी अक्षुण्ण शक्ति का स्रोत है और जब यह पुरुष से सम्बद्ध होती है तो वह शक्तिशाली की उपमा से विभूषित होता है।

वागर्थाविवसंपृक्तौवाथ
प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे
पार्वती परमेश्वरौ।।

यज्ञोपवीता स्त्री के गुणों की विस्तृत चर्चा करते हुए कहा गया है कि उपनीता नारी यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् इतनी सबल हो जाती थी कि वह अत्यन्त दुष्ट एवं पथभ्रष्ट पति को भी सन्मार्ग पर लाती थी–

देवा एतस्यामवदत्त पूर्वे
सप्त ऋषयस्तपसे ये
निषेदुः।
भीया जाया ब्राह्मणस्योपनीता
दुर्धा दधाति परम्येव्योमन्।।

ऋग्वेद– 10/109/4

कुछ बालिकाएँ विद्याध्ययन के बाद विवाह कर लेती थीं। उन्हें 'सद्योद्वाहा' कहते थे और कुछ आजन्म ब्रह्मचारिणी रहती थीं, उन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहा गया। वे तपोमय जीवन व्यतीत करते हुए शास्त्रचर्चा में संलग्न रहती थीं। ऐसा ब्रह्मवादिनी नारियों में गार्गी, मैत्रेयी का नाम उल्लेखनीय है।

वैदिक काल में नारी शिक्षा की यथेष्ट व्यवस्था थी। ऋग्वेदानुसार स्त्रियाँ वेदाध्ययन, सूक्त रचना एवं यज्ञ जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न

करवाती थीं। वैदिक शिक्षा पद्धति एवं स्वतन्त्र तथा समतामूलक समाज का ही प्रभाव था कि वैदिक काल में कई विदुषी महिलाओं ने ऋचाओं की रचना की। वैदिक सूक्तों की रचना करने वाली महिलाओं की संख्या 20 से अधिक है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक युगीन नारी की स्थिति शैक्षिक परिदृश्य में भी उत्तम थी। ब्रह्मवादिनी 'ममता' 'दीर्घतमा' ऋषि की माता थीं, जो महान् विदुषी व ब्रह्मज्ञान सम्पन्न थी। अग्नि के उद्देश्य से किया हुआ इनका स्तुतिपाठ ऋग्वेद संहिता के प्रथम मण्डल के दशम सूक्त की ऋचा में मिलता है। महर्षि 'अत्रि' के वंश में उत्पन्न 'विश्ववारा' ने ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के अट्ठाइसवें सूक्त में वर्णित छः ऋचाओं की रचना की थी। ब्रह्मवादिनी 'अपाला' ने ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के 91वें सूक्त की एक से सात तक की ऋचाएँ संकलित किया। ब्रह्मवादिनी 'सूर्या' ने ऋग्वेद के 'विवाह' सम्बन्धी सूक्त की रचना की। वैदिक विदुषियों की इसी क्रम में ब्रह्मवादिनी 'वाक्' जो 'अम्भृणि' ऋषि की पुत्री थी उन्होंने ऋग्वेदसंहिता के दशम् मण्डल के 125वें सूक्त में देवी सूक्त के नाम से '8' मन्त्र रचे। वैदिक युगीन नारी के वैदुष्य का परिचय हमें उनके विद्वत्ता भरे शास्त्रार्थ में दिखायी देता है।

एक प्रसंग है कि जब विदेह के राजा जनक के दरबार में 'याज्ञवल्क्य' ऋषि से तीक्ष्ण प्रश्न 'वाचक्रवी गार्गी' ने किये यद्यपि अन्त में गार्गी ने ऋषि याज्ञवल्क्य के ज्ञान को सराहा और ऋषि याज्ञवल्क्य ने भी 'गार्गी के बुद्धि कौशल' की प्रशंसा की।

प्रस्तुत कथानक तत्कालीन समाज में नारी की उत्तम बुद्धि कुशलता को दर्शाता है। नोबेल पुरस्कार विजेता एवं प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्यसेन का भी मानना है कि याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद ने उन्हें विकास को देखने का एक भिन्न नजरिया दिया।

वैदिक समाज में नारी की सहभागिता घर से लेकर युद्ध के मैदान तक होती थी। ऋग्वेद में 'विष्पला' का सन्दर्भ मिलता है जो युद्ध क्षेत्र में घायल हुई थीं उनका पैर कट गया था और अश्विनों ने उनकी चिकित्सा करके उन्हें नकली लोहे की टांग लगा दी जिससे वह पुनः युद्ध में भाग ले सकीं।

सद्यो जंघाम् आयसीं विश्पलायै....।

ऋ0वे0 1/116/15

उस समय स्त्रियाँ खेलकूद, प्रतियोगिताओं में भी भाग लेती थीं। ऋग्वेद में प्रसंग मिलता है कि मुद्गल अपनी पत्नी मुद्गलानी के कारण रथदौड़ प्रतियोगिता में विजयी हुआ था और असुरों से युद्ध करके अपनी गायें छुड़ा लीं–

रथीरमूद्गलानी गविष्टौ भरे अजयत् सहस्रम्।

ऋग्वेद 10/102/2

साथ ही प्रशासन के क्षेत्र में भी नारी विधान निर्मात्री, न्यायकर्त्री के रूप में कार्य करती थीं। संहिता कालीन नारी यज्ञ, युद्ध, प्रशासन, न्याय, दैत्य आदि सभी कार्यों को सुसंपादित करने में सक्षम अधिकारिणी थी। ज्ञान के विविध स्रोतों में भी उसकी पैठ थी, जिसके कारण वह राष्ट्र के श्रेय और प्रेय में नर की सहयोगिनी एवं सहधर्मिणी बनकर भाग लेती थी। यही कारण है कि संहिताकालीन पुरुष नारी को

1. कुलपा– (कुल का पालन करने वाली) अथर्ववेद 1/14/3
2. ध्रुवा– (दृढ़ संकल्प वाली) युजुर्वेद (12/53)
3. पुरन्धिः (समाज की नेत्री) यजुर्वेद (14/2)
4. प्रतरकी– (जीवन की पतवार) अथर्ववेद (14/2/29)
5. शिवा– (कल्याणकारिणी) अथर्ववेद (19/40/2)
6. सुमंगली– (मंगलकारिणी) अथर्ववेद (14/2/26)

आदि विशेषणों से संबोधित कर, उसकी श्रेष्ठता और ज्येष्ठता स्वीकार करता है।

ऋग्वेद में **जायेदस्तम् (ऋ0वे0 3/53/4)** में स्त्री को घर की संज्ञा दी गयी है जिसका तात्पर्य यह है कि बिन नारी घर की संकल्पना मिथ्या है। विवाह के पश्चात् उसे पतिगृह में

गृहपत्नी एवं गृहस्वामिनी का अधिकार प्राप्त होता है–

गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासः।

ऋ0 वे0 10/85/25

जहाँ एक ओर उसके ऊपर सम्पूर्ण गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारी होती है, वहीं उसे गृहस्वामिनी के रूप में सास–ससुर, ननद आदि की स्वामिनी भी कहा गया है–

साम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी आर्ध देवृषु।।

ऋ0वे0 10/85/46

नारी पुरुष की अर्धांगिनी है, अतः इसके बिना यज्ञ को अपूर्ण माना जाता है। बिना स्त्री–पुरुष के साथ के कोई यज्ञ या पूजा–कर्म सफल नहीं माना गया है–

अयज्ञो वा ह्येष योऽपत्नीकः।

तैत्तिरीय ब्रा0 2/2/2/6

वेदों में वर्णित है कि स्त्री ज्ञान में उत्कृष्ट होती हैं। तत्कालीन समय में बालकों के शिक्षण के साथ ही वह यज्ञ कर्म भी सम्पन्न करवाती थीं। विभिन्न संस्कारों को कराने में निपुण होने के कारण उन्हें ब्रह्मा कहकर गौरवान्वित किया गया है–

स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।।

ऋ0 8/33/19

यज्ञ कर्म एवं शिक्षण के साथ ही वैदिक युगीन नारी का शौर्य भी बहुचर्चित है। इन्द्राणी को आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत करते हुए उन्हें प्रखर वक्ता, सबला और वीर पुत्रों की जननी के रूप में अभिहित किया गया है। इन्द्राणी के स्वयं का कथन है–

अवीरामिव मामयं शरारुरभिमन्यते।
उताहमस्मि वारिणी।।

अथर्ववेद 20/126/9

तैत्तिरीय ब्राह्मण में इन्द्राणी को सेना की देवता और सेनानी बताते हुए कहा गया है कि वह अजेय ओर अधृष्य है–

इन्द्राण्येतु प्रथमाऽजीताऽमुषिता पुरः।

अथर्ववेद 9/27/4

वेदों में मंत्राद्रष्टा ऋषि के रूप में भी नारी का योगदान स्पृहणीय है। 422 मन्त्रों की द्रष्टा ऋषिकाओं को माना गया है। इनमें से शची, अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, वाक्, सूर्या, कामायनी, काक्षीवती, सावित्री प्रभृति का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसीलिए वेदकालीन नारी को रत्ना की संज्ञा दी गयी है। वैदिक युगीन नारी गणित, वैद्यक, संगीत तथा शिल्प आदि सभी गुणों में निपुण होने के साथ ही धनुर्वेद एवं युद्धविद्या में पारंगत थीं। अपाला को अपने पिता के साथ खेतों में कार्य करते एवं अच्छी फसल के लिए इन्द्र से वृष्टि की याचना करते हुए चित्रित किया गया है। (ऋग्वेद 8/8/5–13)

ऋग्वेद में कन्या को समृद्धि का सूचक मानते हुए वर्णित है–

विष्णुता ददृशदीयते धृतम्

ऋग्वेद 1/135/7

वैदिक काल में उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियों में कुछ आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर आत्मिक उन्नति हेतु अग्रसर थीं।

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दति पतिम्

अथर्ववेद 11/5/18

इस वैदिक अध्ययन से ज्ञात होता है कि जिस प्रकार प्रकृति के बिना पुरुष का कार्य पूर्ण नहीं होता उसी प्रकार स्त्री पुरुष का सामंजस्य ही समाज को समृद्धि तक ले जाता है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए वैदिक कालीन सामाजिक व्यवस्था बनायी गयी थी जिसमें नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान था–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैवास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

मनुस्मृति 3/56

मनु ने इन गौरवमयी पंक्तियों के माध्यम से नारी के प्रति जो वाचिक सम्मान प्रकट किया है, वैदिक नारी उसके सर्वथा योग्य थी। पौराणिक काल में भी नारी को शक्ति का स्वरूप मानकर उसकी आराधना की जाती रही है। पौराणिक युग में नारी वैदिक युग के देवी पद से उतरकर सहधर्मिणी के स्थन पर सुशोभित हो गयी। धार्मिक

कार्यों में उसकी अनिवार्यता अपरिहार्य थी। श्री रामचन्द्र जी ने अश्वमेध के समय सीता की हिरण्यमयी प्रतिमा बनाकर यज्ञ पूर्ण किया। यद्यपि उस समय भी अरुन्धती, लोपामुद्रा (महर्षि अगस्त्य की पत्नी), अनुसूया (अत्रि की पत्नी) आदि दैवी रूप की प्रतिष्ठा के अनुरूप थीं तथापि ये पतियों की सहधर्मिणी ही थी। परम्परागत रूप से भारत के इतिहास में विश्व के अन्य भू–भागों की तुलना में नारी की प्रस्थिति उच्च थी। भारतीय धर्म संस्कृति को छोड़कर विश्व का कोई धर्म नारी को इतनी प्रधानता नहीं देता। इसका सुन्दर उदाहरण है– हिन्दू विवाह पद्धति। भारतीय हिन्दू संस्कृति में विवाह को एक धार्मिक कृत्य माना गया है जो दर्शाता है कि वर पक्ष याचक है और कन्या पक्ष दाता और दाता हमेशा याचक से बड़ा होता है। परमात्मा ने स्त्री–पुरुष को समान स्थान प्रदान किया है। अर्धनारीश्वर की संकल्पना इसी ओर संकेत करती है कि स्त्री–पुरुष सर्वथा समान हैं, जिससे ज्ञात होता है कि वैदिक समाज प्रगतिशील एवं आशावादी था जिसकी प्रगतिशीलता का कारण तत्कालीन उन्नतिशील शिक्षा व्यवस्था थी।

वेदों में कहा गया है–**'सा विद्या या विमुक्तये'** अर्थात् विद्या वह है जो व्यक्ति की मोक्ष प्रदान करे, विनम्र एवं प्रगतिशील बनाए। सम्भवतः यही कारण है कि वैदिक समाज में बाल–विवाह पर्दाप्रथा, सतीप्रथा जैसी कुरीतियाँ प्रचलित नहीं थीं, क्योंकि नारी के सुव्यवस्था एवं सुप्रतिष्ठित जीवन के साथ ही समृद्ध समाज की संकल्पना सम्भव है।

नारी गरिमा का वर्णन करते हुए महर्षि गर्ग ने कहा है कि–

यद्गृहे रमते नारी लक्ष्मीतद् गृहस्वासिनी।
देवताः कोरिशोवत्स न त्यजन्ति गृहं हि तत्।।

अर्थात् जिस घर में सद्गुणसम्पन्ना नारी सुखपूर्वक निवास करती हैं, उस घर में लक्ष्मी का वास होता है और देवता भी उस घर को नहीं छोड़ते।

जीव मात्र के लिए करुणा एवं दया संजोने वाली महाप्रकृति का नाम है 'नारी'।

'महर्षि रमण'

अतः मानवता बनाये रखने के लिए नारी गौरव को समझना आवश्यक है और वैदिक युग इसका आदर्श प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ सूची

1. सायण भाष्य, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई 1918
2.ऋग्वेद संहिताःसायण भाष्य, हिन्दी अनुवाद पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, प्रकाशक–चौखम्बा विद्याभवन, वारणसी 2003
3.यजुर्वेद संहिताःउव्वट महीधर भाष्य सहित मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
4.तैत्तिरीय संहिताःसायण भाष्य सहित, पूना
5.सामवेद संहिताःडॉ0 रामनाथ वेदालंकार, संस्कृत, हिन्दी
6.वैदिक साहित्य एवं संस्कृति– डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
7.वेदों में नारीःडॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद ज्ञानपुर, भदोही, उ0प्र0
8.वैदिक संहिताओं में नारी– डॉ0 मालती शर्मा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि0वि0
9.मनुस्मृतिःडॉ0 रामचन्द्र शर्मा शास्त्री, विद्या विहार, दिल्ली
10.धर्मशास्त्र का इतिहासः पी0वी0 काणे, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।